राजस्थान की जैन कला

□ श्री अगरचन्द नाहटा
नाहटों की गुवाड, बीकानेर (राज०)

जैन मान्यता के अनुसार भगवान ऋषभदेव के पहले मनुष्यों का जीवन पशु-पक्षियों की तरह बँधा-बँधाया, रूढ़ या प्राकृतिक था। भगवान ऋषभदेव ने युग की आवश्यकता और भावी विकास की संभावनाओं पर ध्यान देकर सबसे पहले क्रान्ति की। जीवन को नये ढंग से जीना सिखाया। अपने पुत्र और पुत्रियों को पुरुषोचित बहत्तर और स्त्रियों की ६४ विद्याएँ या कलाएँ सिखाईं जिनके अन्तर्गत उपयोगी ललित कलाओं का समावेश हो जाता है। अतः कला के विकास और प्रसार में भगवान ऋषभदेव का सर्वाग्रणी स्थान है। उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को वर्णमाला के अक्षर सिखाए जिससे लेखन कला का विकास हुआ। दूसरी पुत्री सुन्दरी को अंक सिखाए जिससे गणित विज्ञान विकसित हो सका। असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि जीवनोपयोगी उद्योग सिखाए। उससे पहले मनुष्य बहुत कुछ वृक्षों पर निर्भर था। उन वृक्षों के द्वारा सभी इच्छित और आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति होती थी। इसीलिये उन्हें 'कल्पवृक्ष' कहा गया है। भवन-निर्माण, कुम्भकार, सुथार आदि की सभी कलाएँ ऋषभदेव से ही प्रकाशित और विकसित हुईं। विविध रूपों में इन्हीं का आगे चलकर अद्‌भुत विकास हुआ।

कला को देश-काल, क्षेत्र और धर्म में विभाजित करने की आवश्यकता नहीं; पर प्रत्येक काल, क्षेत्र, धर्म और संस्कृति में कुछ मौलिक ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जिससे कलाओं के अध्ययन में सुविधा हो जाती है। इसलिए यहाँ भारतीय कला में से क्षेत्र की दृष्टि से राजस्थान, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से जैन धर्म व संस्कृति को प्रधानता देते हुए विचार किया जायेगा।

कला के अनेक प्रकार हैं, उनमें से मन्दिर, मूर्तिकला और चित्रकलाओं के जैनाश्रित विविध रूपों पर यहाँ संक्षेप में प्रकाश डाला जायेगा। जैन लेखन-कला पर विस्तार से स्वर्गीय आगम-प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजयजी का गुजराती में स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। जैन मूर्तिकला पर डॉ० उमाकान्त शाह ने विशेष अध्ययन करके विस्तृत शोध प्रबन्ध लिखा है और जैन चित्रकला पर भी डा० मोतीचन्द आदि के ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ० सरयू मोदी ने भी चित्रकला का अच्छा अध्ययन किया है पर उनका शोध प्रबन्ध अभी तक प्रकाशित हुआ देखने में नहीं आया।

जैन आगमों के अनुसार भगवान महावीर के ७० वर्ष बाद की ओसियां में जैन मन्दिर और मूर्ति का निर्माण हुआ था, जिसकी प्रतिष्ठा पार्श्वनाथ संतानीय रत्नप्रभसूरि ने की; पर ओसियां का वर्तमान मन्दिर आठवीं शताब्दी से पहले का नहीं लगता। जैन मूर्तियाँ भी राजस्थान में आठवीं शताब्दी से अधिक संख्या में मिलने लगती हैं। यद्यपि परम्परा इससे पहले की जरूर रही होगी। 'विविध-तीर्थ-कल्प' आदि ग्रन्थों से पता चलता है कि मालनगर, सांचोर आदि स्थानों में इससे काफी पहले जैन मन्दिर और मूर्तियाँ बन चुकी थीं। संवत् ८३५ में जालौर में रचित 'कुवलय-माला' ग्रन्थ की प्रशस्ति में लिखा है कि

तस्स खमासमणगुणा णामेणं जक्खयत्त गणिणामो ॥
सीसो महइ महापा आसि तिलोए विपयडजसो ॥७॥
तस्स य बहुया सीसा तववीरी अवयजलाद्धि संपणज ॥
एम्मो गुज्जरदिसो जेहिं कओ देवहउ ए हिं ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय गुजरात का नाम गुजरात नहीं था। राजस्थान के नागौर, डीडवाना, मण्डौर, भीनमाल आदि प्रदेश को प्राचीन लेखों में गुजरात के अन्तर्गत माना जाता है।

कुवलयमाला की प्रशस्ति में ऊपर उद्धृत श्लोक से पहले यक्षदत्त के गुरु शिवचन्द्र गणि महत्तर के लिये लिखा है कि जिन-वन्दन के लिए घूमते हुए वे भीनमाल नगर में रहे, अर्थात् ८वीं शताब्दी से पहले भी भीनमाल में जैन मन्दिर थे।

संवत ९१५ में नागौर में भोजदेव के राज्य में रचित 'धर्मोपदेश मालावृत्ति' की प्रशस्ति में लिखा है कि यक्ष महत्तर ने खट्टऊवय (खाटू) में जैन मन्दिर बनवाया। कुमारपाल चरित्र' के अनुसार यह मन्दिर नारायण सेठ ने ७१९ में महावीर भगवान का बनवाया था। धर्मोपदेशमाला प्रशस्ति की गाथाएँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

कोए वियाणी जिणमंदिराणि नेगाणि जेण गच्छाण।
देसेसु बहुविहेसु चउव्विहसिर संघ जत्ताणि॥
नगरेसु सयं वुच्छो, युत्तु वा जाव गुज्जरत्ताए।
नागउराइसु जिणमंदिराणि जायाणि जेगाणि॥

विविध तीर्थ कल्प के अनुसार सांचोर का महावीर मन्दिर वीर संवत् ६०० में बनाकर पीतल की महावीर मूर्ति स्थापित की थी जिसकी प्रतिष्ठा ऋजकसूरि ने की थी। अर्थात् विक्रम संवत् १३० में सांचोर का महावीर मंदिर बना था।

राजस्थान के जैन मन्दिर और मूर्तियों की कला का अध्ययन ८वीं शताब्दी से तो विधिवत् किया जा सकता है। ८वीं शताब्दी की जो पीतल की मूर्तियाँ बंसतगढ़ आदि से मिली हैं, वे गुप्तकालीन जैन कला का प्रतिनिधित्व करती हैं। उसी समय की एक भव्य धातु-मूर्ति बीकानेर के चिंतामणिजी के मंदिर में भी है जो अभी सुरक्षा की दृष्टि से बैंक के लोकर्स में रखी हुई है।

अकबर द्वारा सम्मानित राजस्थान के महाकवि समयसुन्दर ने सं० १६६२ में गंगाजी तीर्थ स्तवन बनाया है जिसमें मंडोर देश के गाँधीजी के चुघेला तालाब के खोकर नायक मंदिर के पीछे भुंवरि में जो मूर्तियाँ संवत् १६६२ के जेठ सुदी ११ को प्रकट हुईं उन ६५ प्रतिमाओं का विवरण देते हुए लिखा है कि वीर संवत् २०३ में आर्य सुहस्तिसूरि द्वारा माघ सुदी ८ को प्रतिष्ठित और संप्रति राजा कारित श्वेत सेना की प्रतिमा मिली है और वीर सं० १७० में चन्द्रगुप्त कारित और भद्रबाहु प्रतिष्ठित प्रतिमा मिली है। समयसुन्दर के दिये हुए विवरण का आवश्यक अंश नीचे दिया जा रहा है :—

प्रगटचऊ खरउ भूंइरउ किण माँहि प्रतिमा चली।
जेठ सुदी ११ सोलह व्यसढ़ विंस प्रकट चउ मन रली॥
बैसे तिडौत्तर वीरथी, संवत् प्रबल प्रष्टर।
पद्म प्रभु प्रतिष्ठियां, आर्य सुहस्ती सूरि॥
माह तणी सुदि आठमी, शुभ मुहरत विचार।
ए लिपि प्रतिमा पूठे लिखी, ते वांची सुविचार॥ ८॥
अर्जुन पास जुहारियइ, अर्जुन पुरि सिणगारो जी।
तीर्थंकर तेवीसयउ मुक्ति तणउं दातारो जी॥ २अ०॥
चन्द्रगुप्त राजा थयउ, चाणिक्यइ दीधउ राजो जी।
तिण ए बिंबभरावियउ, सारचा उत्तम कांजी जी॥ ३अ०॥
महावीर संवत् थकी बरस, सत्तर सउ वीतो जी।
तिण समै चवद पूरव धरू, श्रुत केवली सुविदीतो जी॥ ४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्रबाहु सामी थया, तिण कीधी प्रतिष्ठो जी।
आज सफल दिन माहरउ, ते प्रतिमा मइ दीठो जी ॥ ५ ॥

राजस्थान में पुराने जैन मन्दिर अब उसी रूप में नहीं रहे जिस रूप में वे बने थे, क्योंकि ज्यों-ज्यों मन्दिर जीर्ण होते गये, उनका जीर्णोद्धार करते गये, उनका परिवर्तन व परिवर्द्धन होता गया फिर भी कुछ अंश पुराना बचा होगा। अब उससे प्राचीन जैन मन्दिर और स्थापत्य कला के विकास का सही चित्र उपस्थित नहीं किया जा सकता। पर मूर्तियाँ जो भी प्राप्त हैं वे तो उसी रूप में विद्यमान हैं। इसीलिए उनके आधार पर मूर्तिकला में जो विकास और ह्रास हुआ है, उस पर कला मर्मज्ञों द्वारा अच्छा प्रकाश डाला जा सकता है।

पाषाण की मूर्तियों में इतनी विविधता नहीं जितनी जैन धातु मूर्तियों में पाई जाती है। वास्तव में जैन तीर्थंकरों की ही नहीं अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों में भी बहुत परिवर्तन दिखाई देता है। धातु की मूर्तियों में त्रितीर्थी, पंचतीर्थी, और चतुर्विंशतिका (चौबीस) जैन मूर्तियाँ विविध प्रकार की पायी जाती हैं, आगे चलकर कला का ह्रास भी नजर आता है। पर आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं। तेरहवीं के बाद से कला में ह्रास शुरू होता है, यहाँ जैन मूर्तियों के सम्बन्ध में चर्चा करने का अवकाश नहीं है। जैन मन्दिर और मूर्ति निर्माण के सम्बध में जो वास्तुसार आदि ग्रंथ पाये जाते हैं उनकी अपेक्षा प्राप्त मूर्तियों की विविधता बहुत अधिक है। इसलिए जिस प्रकार गुजराती में 'गुजरात प्रतिमा विधान' नामक ग्रंथ निकला है, उसी तरह राजस्थान में तीर्थंकरों, देवी-देवताओं आदि कीं मूर्तियों के क्रमिक विकास का अध्ययन प्रकाश में आना चाहिए। मूर्तियों के अलंकरण रूप में जो पार्श्ववर्ती परिकर आदि की सुन्दर कला का विकास हुआ, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सौभाग्य से जैन धातु मूर्तियाँ हजारों की संख्या में अब भी बच पाई हैं और वे आठवीं शताब्दी से लेकर अब तक की निरन्तर बनी हुई अच्छी संख्या में प्राप्त हैं। वैसे तो प्रत्येक मन्दिर में पाषाण मूर्तियों के साथ-साथ धातु मूर्तियाँ भी मिलती हैं, पर बीकानेर के चिन्तामणि मन्दिर और महावीर मन्दिर के भौंयरे में करीब १३५० मूर्तियाँ एक साथ देखने को मिल जाती हैं। इनमें से चिन्तामणि मन्दिर के भौंयरे में जो ११०० प्रतिमाएँ हैं उनमें से १०५० तो सं० १६३५ में तुरसमखान ने जो सिरोही में लूट की थी वहाँ से सम्राट अकबर के पास गईं और वहाँ से सं० १६३९ में बीकानेर के महाराजा रायसिंह और मंत्री करमचन्द बच्छावत के प्रयत्न से यहाँ आईं। इन प्रतिमाओं के लेख हमने बीकानेर जैन लेख संग्रह में प्रकाशित कर दिये हैं तथा साथ ही कुछ प्रतिमाओं के ग्रुप फोटो भी। इसी तरह वेदों के महावीर मन्दिर के एक गुप्त स्थान में २३५ धातु प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं, जिनमें से कुछ के ही लेख हम अपने संग्रह में ले सके हैं।

सिरोही में भी एक जैन संग्रहालय में काफी जैन धातु मूर्तियों का संग्रह किया गया है, पर उन सबके लेख व फोटो प्रकाशित न होने से वे किन-किन संवतों की और कैसी विविधता वाली हैं, यह कहा नहीं जा सकता। वास्तव में जैन मूर्ति कला का अध्ययन केवल पाषाण मूर्तियों द्वारा ठीक से नहीं हो सकता। धातु मूर्तियों की खूबियों और विविधता को कलात्मक अध्ययन के लिए जानना बहुत ही आवश्यक है। कमलाकार पंखुड़ियों पर और बीच में जो एक सुन्दर जैन मूर्तियों का पुष्प मिलता है वह खिला हुआ मूर्ति पुष्प देखते ही मनुष्य का हृदय-कमल खिल उठता है।

जैन देवी-देवताओं की मूर्तियों में पल्लू से प्राप्त पाषाण की दो सरस्वती मूर्तियाँ तो विश्वविख्यात हो चुकी हैं और उसी तरह की दिगम्बर मन्दिर की सरस्वती मूर्ति बहुत ही सुन्दर है और लेख युक्त है।

जैन मूर्तिकला का एक विशिष्ट रूप जीवंत स्वामी की प्रतिमा है। प्राचीन उल्लेखों के अनुसार तो मालवा और राजस्थान आदि में कई जीवंत स्वामी की प्रतिमाएँ प्रसिद्ध व पूज्य रही हैं। ये प्रतिमाएँ अधिकांश लुप्त हो गई हैं। गुजरात में जो थोड़ी-सी जीवंत स्वामी की प्रतिमाएँ मिलती हैं उनमें से एक प्राचीन धातु प्रतिमा बहुत ही भव्य है। राजस्थान में जो पाषाण की विशाल प्रतिमाएँ मिली हैं वे मध्यकाल की होने पर भी बहुत ही आकर्षक और कलापूर्ण हैं। उनमें से नागौर के निकटवर्ती खींवसर से प्राप्त जीवंत स्वामी की लेख युक्त प्रतिमा तो अब जोधपुर के जैनकक्ष की शोभा बढ़ा रही है। पर अभी-अभी ओसियां के महावीर मन्दिर में खण्डित जीवंत स्वामी की तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमाएँ मिली हैं, वे भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें से एक के ऊपर ११वीं शताब्दी का लेख भी खुदा हुआ है। इन प्रतिमाओं का विवरण जैन सिद्धान्त भास्कर १९७४ के अंक में मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी के लेख में प्रकाशित हो चुका है। जैन मन्दिरों और मूर्तियों की कला के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेख में थोड़ा-सा संकेत कर दिया है। आबू और राणकपुर आदि के मन्दिर तो विश्वविख्यात हैं। पर इस शैली और कोरनी वाले जैन मन्दिर भी कई हैं। जैसलमेर के जैन मन्दिर भी स्थानीय पीले पाषाण के सुन्दर हैं तथा कारीगरी व कोरनी के प्रतीक हैं।

कई मन्दिरों में द्वार तो बहुत ही कलापूर्ण है तथा कइयों के खम्भे, छतें बारीक, कोरणी और सुन्दर के उत्कृष्ट नमूने हैं। मुसलमानों के आक्रमण से बहुत से प्राचीन व कलापूर्ण मन्दिर और मूर्तियों का भयंकर विनाश होने पर भी जैन संघ की महान भक्ति, कलाप्रियता के कारण बहुत से मन्दिर व मूर्तियाँ सुरक्षित रह सकीं व समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। इसीलिए हिन्दू मन्दिर और मूर्तियों की अपेक्षा जैनों की संख्या कम होने पर भी जैन मन्दिर और मूर्तियाँ अधिक सुरक्षित रह सकी हैं। इनके द्वारा हम केवल प्राचीन कला की ही जानकारी नहीं पाते पर साथ ही समय-समय पर जनता की लोकप्रियता में जो नये-नये मोड़ आये, उनकी भी अच्छी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कई जैन मन्दिरों में काँच का काम व कइयों में चित्रकला आदि अनेक तरह के कलाप्रेम का दिग्दर्शन मिल जाता है। अब हम चित्रकला के विकास व संरक्षण में जो राजस्थान के जैन समाज का बहुत बड़ा योग रहा है उसका संक्षिप्त परिचय देने जा रहे हैं।

भारतीय चित्रकला के प्राचीन नमूने गुफाओं आदि में मिलते हैं। राजस्थान में ऐसी प्राचीन गुफाएँ, जिनमें सुन्दर चित्र अंकित हों, नहीं पायी जातीं।

इसलिए हम राजस्थान की जैन चित्रकला का प्रारम्भ काष्ठपट्टिकाओं और ताड़पत्रीय प्रतियों से करते हैं, जो सर्वाधिक जेसलमेर के जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार में सुरक्षित हैं। सचित्र काष्ठपट्टिकाओं सम्बन्धी एक ग्रन्थ 'जैसलमेर नी चित्र समृद्धि' साराभाई नवाब अहमदाबाद ने प्रकाशित किया है। राजस्थान की ललित कला अकादमी की पत्रिका 'आकृति' अप्रेल ७५ के अंक में मेरा एक लेख 'जैसलमेर में सुरक्षित चित्रकला की सामग्री' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। वास्तव में सबसे प्राचीन सचित्र काष्ठ-पट्टिकाएँ व ताड़पत्रीय प्रतियाँ जैसलमेर के बड़ा ग्रंथ भण्डार की अमूल्य निधि हैं।

जैन चित्रकला के प्राप्त उपादानों में १२वीं शताब्दी[1] से काष्ठपट्टिकाओं वाले चित्र बहुत उल्लेखनीय हैं। यद्यपि कई सचित्र काष्ठपट्टिकाएँ इससे पहले की भी हो सकती हैं पर जिनका समय निश्चित है उनके सम्बन्ध में मैंने चर्चा की है। संवत् १९९९ में जब मैं प्रथम बार जैसलमेर के भण्डारों को देखने गया तो मैंने एक लकड़ी की पेटी में बहुत-सी टूटी हुई ताड़पत्रीय प्रतियों के टुकड़े देखे जिनकी लिपि ८वीं से १०वीं शताब्दी तक की थी। पर दूसरी बार जाने पर वे सब टुकड़े गायब हो गये। कुछ तो कई व्यक्ति उठाकर ले गये और कुछ कचरा समझ कर फेंक दिये गये। आज जैसलमेर की प्राचीनतम ताड़पत्रीय प्रति 'विशेषावश्यक महाभाष्य' की एकमात्र बच पाई है जो विक्रम की दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की मानी गई है। ऐसी और इससे पहले की कई प्रतियाँ वहाँ थीं। ताड़पत्रीय प्रतियों के दोनों ओर काष्ठ की पट्टिकाएँ लगाई जाती हैं। इसलिए उन प्राचीन प्रतियों के साथ वाली कुछ सचित्र पट्टिकाएँ भी होंगी, उनमें से कुछ ही पट्टिकाएँ आज भी बच पाई हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ सचित्र काष्ठ फलक प्राप्त हैं, उनमें से शायद सबसे प्राचीन हमारे संग्रह में है जिसमें सोमचन्द्र आदि का नाम उनके चित्र के साथ लिखा हुआ है। जिनदत्त सूरि का दीक्षा नाम सोमचन्द्र था और उन्हीं का इस पट्टिका में चित्र है इसलिए यह पट्टिका निश्चित रूप से सम्वत् ११६९ के पहले की है क्योंकि ११६९ में सोमचन्द्र को चित्तौड़ में आचार्य पद देकर जिनदत्त सूरि नाम घोषित कर दिया गया था। इनके गुरु महान विद्वान जिनवल्लभ

१. इस लेख में शताब्दियों का उल्लेख विक्रम की शताब्दी के अनुसार किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरि की चित्र वाली एक पट्टिका प्राप्त है और जिनदत्त सूरि की तो अन्य दो-तीन पट्टिकाएँ और भी प्राप्त हैं जिनमें से एक त्रिभुवन गिरि वाले राजा कुमारपाल का भी आचार्य श्री की भक्ति करते हुए चित्र अंकित है। यह पट्टिका जैसलमेर के थाहरू सार भंडार में रखी हुई है। जिनदत्त सूरि का दूसरी एक पट्टिका का चित्र मुनि जिनविजयजी ने प्रकाशित किया था। उसी से लेकर हमने अपने युग प्रधान जिनदत्त सूरि पुस्तक में छपवाया था। श्री जिनदत्तसूरि के चित्रवाली पट्टिकाओं का वर्णन मेरे भ्रातृपुत्र भंवरलाल ने मणिधारी जिनचन्द्र सूरि अष्टम शताब्दी ग्रंथ में प्रकाशित कर दिया है। चार पट्टिकाओं के चित्र भी इस ग्रंथ में छपवा दिये गये हैं।

१२वीं शताब्दी की ही एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पट्टिका वादिदेवसूरि की जैसलमेर भण्डार में थी जिसे मुनि जिनविजय जी ले आये। पहले तो मैंने उस पट्टिका को भारतीय विद्याभवन बम्बई में देखी थी, उसके बाद कलकत्ता में चुन्नीलालजी नवलखा के पास देखी। इस कलापूर्ण चित्र पट्टिका के रंगीन श्लोक भारतीय विद्याभवन से छपे थे। वास्तव में इसके चित्र बहुत ही भव्य एवं आकर्षक हैं। ताड़पत्रीय सचित्र प्रतियाँ भी जैसलमेर भण्डार में कई हैं। चित्रित ताड़पत्र और भी कई देखने को मिले जिनमें से 'कल्पसूत्र' का एक पत्रीय चित्र हमारे कलाभवन में भी हैं। एक चित्र हरिसागर सूरि ज्ञान भण्डार में भी देखा था, इसी भण्डार में एक सचित्र काष्ठपट्टिका भी सुरक्षित है। कागज की प्रतियाँ भी सबसे पुरानी जैसलमेर में ही मिलती हैं जिनमें से १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ की 'ध्वन्यालोक लोचन' का ब्लाक मुनि जिनविजयजी ने प्रकाशित करवाया था। उसकी प्रशस्ति तो हमने अपने मणिधारी जिनचन्द्र सूरिग्रंथ में प्रकाशित की थी। यह प्रति मुनि जिनविजय जैसलमेर से लाये थे। अभी राजस्थान विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में प्रदर्शित है। कागज की सचित्र प्रतियाँ १८वीं शताब्दी से अधिक मिलने लगती हैं। ऐसी प्रतियों में मेवाड़ चित्रित 'सुपासनाहचरिय' की प्रति विशेष अप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उसमें काफी चित्र हैं और प्रशस्ति में संवत् व स्थान दोनों का स्पष्ट उल्लेख है। १५वीं शताब्दी की ही एक और सचित्र पाण्डव चरित्र की प्रति हमें जोधपुर केशरियानाथ भण्डार में देखने को मिली जिसका सचित्र परिचय हम प्रकाशित कर चुके हैं। इसी शताब्दी के लिखे कई कल्पसूत्र देखने में आये जिसकी एक प्रति हमारे संग्रह में भी है। १६वीं शताब्दी में कल्पसूत्र और कालिकाचार्य कथा की सैकड़ों सचित्र और स्वर्णाक्षरी तथा विशिष्ट बोर्डर वाली प्रतियाँ पाई जाती हैं।

राजस्थान के दिगम्बर शास्त्र भण्डारों में १५वीं शताब्दी का सचित्र आदिपुराण प्राप्त हुआ है। इसके बाद तो जैन ग्रन्थों की सचित्र प्रतियाँ खूब तैयार हुईं। अपभ्रंश चित्रकला के सर्वाधिक उपादान जैन सचित्र ग्रन्थ पट्टिकाओं में ही सुरक्षित है। पहले हलदिया रंग का अधिक प्रचार था। वह रंग इतना पक्का और अच्छा बनता था कि सात सौ आठ सौ वर्ष पहले की पट्टिकाएँ आज भी ताजी नजर आती हैं। इसके बाद लाल, हरे रंग, सुनहरी, स्याही का चित्र बनाने में अधिक उपयोग किया जाने लगा, इससे चित्रों की सुन्दरता बढ़ गई और आकृतियों की बारीकी भी बढ़ गई। वैसे तो अपभ्रंश चित्रकला का प्रभाव १७वीं शताब्दी की प्रतियों में भी पाया जाता है पर वह केवल अनुकरण मात्र-सा है।

१७वीं शताब्दी से जैन चित्रकला ने एक नया मोड़ लिया। सम्राट अकबर से जैनाचार्यों और मुनियों का सम्पर्क बढ़ा, वह जहाँगीर और शाहजहाँ तक चला। इसलिये मुगल चित्रकला में भी जैन ग्रंथ विज्ञप्ति-पत्र आदि चित्रित किये जाने लगे। सचित्र विज्ञप्ति पत्रों की परम्परा विजयसेनसूरि वाले पत्र से शुरू होती है। इसी तरह शालिभद्र चौपाई भी चित्रित की गई। १७वीं शताब्दी से ही संग्रहकला आदि जैन भौगोलिक ग्रन्थों के सचित्र संस्करण तैयार होने लगे। इससे जैन चित्रकला का एक नया मोड़ प्रारम्भ हुआ, जिसमें केवल व्यक्ति चित्र ही नहीं, भौगोलिक चित्र भी बनाये जाने लगे।

यहाँ १५वीं से १७वीं शताब्दी के सचित्र वस्त्र पट्टों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। वस्त्र पर लिखे हुए ग्रन्थ १४वीं शताब्दी से मिलने प्रारम्भ होते हैं पर सचित्र वस्त्र पट्ट १५वीं शताब्दी से ही मिलने लगते हैं। सबसे प्राचीन सचित्र वस्त्र पट्ट भी हमारे श्री शंकरदान नाहटा कलाभवन में ही है। यह पार्श्वनाथ यंत्र तंत्र वाला पट्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५वीं शती के प्रारम्भ का ही है, क्योंकि इस वस्त्र-पट्ट के नीचे जो आचार्यश्री का चित्र है उनका समय संवत् १४०० के आसपास का है। इस समय वस्त्र पट्ट के ऊपर दोनों ओर पार्श्व में यक्ष और पद्मावती देवी के सुन्दर चित्र हैं। बीच में भगवान पार्श्वनाथ के मन्त्र लिखे हुए हैं और नीचे आचार्य-चित्र है। आकार में भी यह काफी बड़ा है। ये पट्ट पूजित रहे हैं।

१५वीं शताब्दी का ही एक छोटा वस्त्र पट्ट हमारे संग्रह में है, जो पहले वाले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित है, जिसमें अपभ्रंश शैली के सुन्दर चित्र हैं। इस तरह के कई वस्त्र पट्ट १५वीं के उत्तरार्द्ध के हमारे देखने में आये हैं, जिनमें से एक बड़े पट्ट का फोटो हमारे संग्रह में है। बहुमूल्य सचित्र वस्त्र पट्ट लंदन के म्युजियम में प्रदर्शित है। कुछ वस्त्र पट्ट जैन तीर्थों के चित्र वाले भी देखने को मिले, जिनसे उस समय उन तीर्थों की सही स्थिति का परिचय मिल जाता है और दृश्य सामने आ जाता है। तीर्थ यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण जैसलमेर में चित्रित किया हुआ वस्त्र पट्ट अभी जयपुर के खरतरगच्छ ज्ञान भण्डार में देखने को मिला। इसी प्रकार सूरिमन्त्र पट्ट, वर्द्धमान विद्या पट्ट, ऋषिमण्डल मन्त्र पट्ट, विजय मन्त्र पट्ट, पार्श्वनाथ मन्त्रगर्भित पट्ट आदि अनेकों प्रकार के प्राचीन वस्त्र पट्ट प्राप्त होते हैं और आज भी ऐसे वस्त्र पट्ट बनते हैं।

जैन तीर्थों सम्बन्धी कई बड़े-बड़े वस्त्र पट्ट गत दो अढाई सौ वर्षों में बने हैं। उनमें से एक शत्रुंजय तीर्थ का बड़ा पट्ट मेरे संग्रह में भी है। वैसे प्रायः सभी बड़े मन्दिरों और उपासरों में शत्रुंजयतीर्थ के पट्ट पाये जाते हैं क्योंकि चैत्री पूर्णिमा आदि के दिन उन पट्टों के सामने तीर्थ वन्दन करने की प्राचीन प्रणाली जैन समाज में चली रही है। मैंने कुछ बड़े-बड़े पट्ट ऐसे देखे हैं जिनमें कई तीर्थों का एक साथ चित्रण हुआ है। इन पट्टों से उस समय उन तीर्थों की क्या स्थिति थी, यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

मन्त्र-तन्त्र आदि के पट्टों की तरह भौगोलिक वस्त्र पट्ट भी १५वीं शताब्दी के बराबर बनते रहे हैं जिनमें जम्बूद्वीप, अढाई द्वीप और अन्य द्वीप समुद्रों तथा १४ राजूलोक के पट्ट विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनमें से कई पट्ट तो बहुत बड़े-बड़े बनाये गये जिनमें देवलोक, मनुष्यलोक, नरकलोक, इन तीनों लोकों, द्वीप, समुद्रों के साथ अनेक पशु-पक्षियों, मच्छी-मच्छ आदि जलचर जीवों, देवताओं और देव-विमानों आदि के छोटे-छोटे सैकड़ों चित्र पाये जाते हैं। एक तरह से जैन भौगोलिक मान्यताओं को जानने के लिए वे सचित्र एलबम के समान हैं। हमारे कलाभवन में नये, पुराने अनेक प्रकार के वस्त्र पट्ट संग्रहीत है और बीकानेर तथा अन्य राजस्थान के जैन भण्डारों में सचित्र वस्त्र पट्ट काफी संख्या में प्राप्त हैं। इनमें विविधता का अंकन है और रंगों आदि की वैविध्यता भी पाई जाती है। ऐसे ही कुछ भौगोलिक और तंत्र मन्त्र के पट्ट कागज पर भी चित्रित किये हुए प्राप्त हैं। वास्तव ऐसे चित्रों की एक लम्बी परम्परा रही है और इस पर एक सचित्र स्वतन्त्र पुस्तक पुस्तक भी लिखी जा सकती है। दिगम्बर समाज में ऐसे वस्त्र पट्टों को 'मांडण' कहते हैं और वे मांडण आज भी अनेक प्रकार के बनते हैं और उनका पूजा-विधान प्रचलित है।

भित्ति-चित्र भी राजस्थान के अनेक जैन मन्दिरों, उपासरों आदि में प्राप्त हैं। पर प्राचीन भित्ति-चित्र बहुत से खराब हो गये हैं, इसलिए इन पर पुताई या कली आदि करके नये चित्र बना दिये गये, फिर भी २००-३०० वर्षों के तो भित्ति-चित्र कई जैन मन्दिरों में पाये जाते हैं। इन चित्रों में तीर्थंकर का जन्माभिषेक, समवसरण, रथयात्रा, तीर्थों और जैन महापुरुषों के जीवन सम्बन्धी सैकड़ों प्रकार के चित्र पाये जाते हैं और यह परम्परा आज की चालू है। बीकानेर के कई मन्दिरों में २०० वर्षों तक के भित्ति-चित्र सुरक्षित हैं, जिनमें कुछ ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़े महत्त्व के हैं। यहाँ गौड़ी पार्श्वनाथ मन्दिर में सम्मेद शिखर आदि के अतिरिक्त जैनाचार्यों, योगी ज्ञानसार, कई भक्त श्रावक जनों आदि के चित्र प्राप्त हुए हैं। भांडासरजी के मन्दिर में गुम्बज और नीचे की गोलाई में बीकानेर के विज्ञप्ति-पत्र आदि अनेक महत्त्वपूर्ण चित्र हैं। बोरों के सेरी के महावीर मन्दिर में तो २५-३० वर्ष पहले चित्रित भगवान महावीर के २७ भव और अनेक जैन कथानकों के चित्रों से तीनों ओर की दीवारें भरी हुई हैं। दादावाड़ियों में श्री जिनदत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरि, जिनकुशलसूरि, जिनचन्द्रसूरि के जीवनी सम्बन्धी अनेकों चित्र तीनों ओर की दीवारों पर काफी संख्या में बताये जाते हैं। बीकानेर के सबसे प्राचीन चिन्तामणि के मन्दिर में दादाजी की देहरी है, उसमें तथा उदरामसर आदि की दादाबाड़ियों में भित्तिचित्र हैं, पर सबसे अधिक चित्र रेल दादाबाड़ी में मेरे बड़े भ्राता मेघराजजी की देखरेख में बनाये गये हैं। दादावाड़ियों के चित्रों की एक अलग परम्परा है। अजमेर आदि अनेक जैन दादावाड़ियों में मूल गुम्भोर या बाहर के मण्डप में दादाजी की जीवनी सम्बन्धी अनेकों भित्ति-चित्र देखने को मिलते हैं।

व्यक्ति चित्र और प्रतीक चित्र भी जैन समाज ने हजारों की संख्या में बनाये हैं। व्यक्ति चित्रों में सबसे पहले तीर्थंकरों, आचार्यों, श्रावकों के चित्र उल्लेखनीय हैं। तीर्थंकर चित्रों में ऋषभदेव, नेमिनाथ, पारसनाथ, महावीर और उनमें भी सबसे अधिक पारसनाथ के सुन्दर चित्र प्राप्त हैं। पारसनाथ के सात नागफन ही नहीं, सहस्रों नागफनों वाली मूर्तियों की तरह चित्र भी मिलते हैं जिनमें कमठ का उपसर्ग, विशाल सर्प और धरणेन्द्र तथा पदमावती चित्रित भी किये गये हैं। चौबीस तीर्थंकरों के संयुक्त चित्र भी मिलते हैं और अलग-अलग भी; जिनमें प्रत्येक तीर्थंकर के वर्ण, लांछन आदि की भिन्नता रहती है। ऐसे एक-एक तीर्थंकर के चित्रों का संयुक्त एलबम चौबीसी कहलाती है। प्रतिदिन भक्तगण अपने घरों में इन चौबीसों के दर्शन करते थे। इसलिए सैकड़ों सचित्र चौबीसियाँ बनाई गईं, जिनमें से कुछ तो कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं।

जिस प्रकार प्रत्येक राज्य में वहाँ के शासकों की चित्रावली बनाई गई उसी तरह जैनों के गच्छपति, आचार्यों, विशिष्ट मुनियों, यतियों की चित्रावली बनाने की एक परम्परा रही है। खरतरगच्छ के कई आचार्यों आदि के चित्र हमने अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह आदि ग्रन्थों में प्रकाशित करवाये हैं। कई अप्रकाशित चित्र भी हमने देखे हैं और कुछ हमारे संग्रह में भी हैं। हमारे कला भवन में जिनदत्तसूरि के पंचनदी साधन, लोंकागच्छ के आचार्य व ज्ञानसागरजी, क्षमाकल्याणजी, जयकीर्तिजी आदि के ऐतिहासिक चित्र हैं। इसी तरह जैन श्रावकों में कर्मचन्द बच्छावत, अमरचन्द सुराणा आदि के चित्र हैं।

प्रतीक चित्रों में लेश्या, मधुबिन्दु, ऋषिमण्डल तथा पूज्य चित्रों में नवपद, सिद्धचक्र, सर्वतोभद्र, ह्रींकार आदि के प्रतीक चित्र उल्लेखनीय हैं। इनमें से सिद्धचक्र वाले चित्रों में तो मोती जड़े हुए भी प्राप्त हैं।

प्रतीक चित्रों में भौगोलिक चित्रों के अतिरिक्त नारकी के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जैन धर्मानुसार घोर पाप करने वाले नरक में उत्पन्न होते हैं। उनमें से कौन से पाप करने वाले को किस तरह का दारुण दुःख नरक-लोक में भोगना पड़ता है। इस बात को सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचाकर उन पापों से विरत करने के लिए अनेकों प्रकार के चित्र बनवाये गये। इसी तरह पाँच मेरु पर्वत, कई तीर्थों, द्वीप, समुद्रों आदि के प्रतीक चित्र बनाये गये जिनसे जैन मान्यताओं की सचित्र जानकारी सबको सुलभ हो सके।

हस्तलिखित प्रतियों में चित्र बनाने के साथ-साथ इन प्रतियों को सुरक्षित रखने के लिए जो पुट्ठे व दाबड़े बनाये गये उनमें तथा लिखने के काम में आने वाले कलमदान आदि में भी चित्र बनाये जाते रहे हैं। दाबड़े और पुट्ठे तथा कलमदान अधिकतर पुट्ठे के बनाये जाते हैं। रद्दी कागजों को पानी में गलाकर कूटकर गत्ते जैसे बनाये जाते हैं। उनके पुट्ठे हजारों की संख्या में बने और उनमें से कइयों पर तीर्थंकरों की माता के चौदह स्वप्न, अष्ट मंगलीक, नेमिनाथ की बारात, मधुबिन्दु, इलाचीकुमार का नाटक, फूल, बेल, पत्तियाँ आदि अनेक प्रकार के चित्र बनाये गये। हमारे संग्रह में ऐसे पच्चासों पुट्ठे हैं। जिनमें से एक पुट्ठा करीब साढ़े तीन सौ वर्ष पुराना है। एक पुट्ठे पर चमड़ा लगाकर बेल-बूटियों का सुन्दर काम किया हुआ है। कई दाबड़े भी बहुत कलापूर्ण बनाये गये हैं और एक पुट्ठे के कलमदान पर सुन्दर चित्रकारी हमारे संग्रह में है। यहाँ पुट्ठे के हाथी, मन्दिर आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ चित्रित और कारीगरी वाली पाई जाती हैं। लकड़ी की पेटियों पर व पट्टियों पर सुन्दर चित्र हमारे संग्रह में हैं।

राजस्थान की जैन चित्रकला की अभी तक विद्वानों को सही जानकारी नहीं है क्योंकि इस सम्बन्ध में जो भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम हुआ है वह गुजरात व गुजराती भाषा में अधिक हुआ है या कुछ ग्रंथ व लेख अंग्रेजी भाषा में निकले हैं। इससे हिन्दी क्षेत्र में व राजस्थान के निवासियों को जैन चित्र कला की वास्तविक जानकारी व महत्त्व विदित नहीं है। इस दृष्टि से कुछ विशेष बातें सूचित कर देना आवश्यक समझता हूँ।

अपभ्रंश चित्रकला की परम्परा जैन समाज में अब तक चली आ रही है, यद्यपि एक चश्म, डेढ़ चश्म आदि लघु चित्र शैली में काफी अन्तर आ गया है फिर भी मुगल परम्परा का अन्य चित्र शैलियों पर जो प्रभाव पड़ा उतना जैन चित्र शली पर नहीं पड़ा। जैनों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। अतः स्थानीय विशेषताओं के साथ-साथ जैन चित्रकला खूब फली-फूली। १७वीं शताब्दी में सम्राट अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में चित्र-कला का खूब विकास हुआ। इसी काल में जैनों के सचित्र विज्ञप्ति पत्र का विकास प्रारम्भ होता है। इसी तरह संग्रह आदि भौगोलिक ग्रंथ तथा अनेक चरित काव्य सचित्र रूप में लिखे गये। शाही चित्रकारों का भी उपयोग किया गया। विजयसेनसूरि वाला सचित्र विज्ञप्ति लेख और धन्ना-शालिभद्र चौपाई की प्राप्त प्रति शाही चित्रकार शालीवाहन आदि के द्वारा चित्रित हैं।

१७वीं शताब्दी में शिथिलाचारी जैन यतियों से मथेन नामक एक जाति निकली। कहा जाता है कि सं० १६१३ में सम्राट अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान विनयचन्द्र सूरि बीकानेर आये और यहाँ के मन्त्री संग्रामसिंह बच्छावत की प्रेरणा और सहयोग से क्रियाउद्धार किया। तब यहाँ के उपाश्रयों में शिथिलाचारी यति रहते थे। उनमें से जिन्होंने शुद्ध साधु-आचार को अपनाया वे तो सूरिजी के साथ हो गये और जो लोग जैन साधु के कठिन आचारों को पालने में असमर्थ रहे वे गृहस्थ हो गये। उनकी आजीविका के लिए उन्हें वंशावली लेखन, प्रतियों की प्रतिलिपि करना, चित्र बनाने आदि का काम करने के लिए, प्रोत्साहित किया गया। उनकी जाति मथेण, जिसे महात्मा, मथेण भी कहते हैं, कायम हुई। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में मथेनों में कई विद्वान ग्रन्थकार, कवि हुए और बहुत से व्यक्ति प्रतिलिपियाँ करके और कुछ चित्रकारी करके अपनी आजीविका चलाते थे। बीकानेर के साहित्य और कला प्रेमी महाराजा अनूपसिंह के आश्रय में ऐसे कई मथेण साहित्यकार और प्रतिलिपिकार हुए हैं जिनकी लिखी हुई सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियाँ और रचे हुए ग्रन्थ अनूप संस्कृत लायब्रेरी में संग्रहीत हैं। मथेण जाति के अनेक चित्रकारों के चित्रित जैन-जैनेतर ग्रन्थ काफी संख्या में जैन-जैनेतर भण्डारों में प्राप्त हैं। उनकी अपनी एक अलग चित्र शैली बन गई जिनमें सैकड़ों चौबीसियाँ अनेक फुटकर चित्र और बहुत सी रास-चौपाई आदि चरित्र काव्यों की प्रतियाँ प्राप्त हैं। इनमें एक-एक प्रति में दस, बीस, पचास और अस्सी, सौ तक विविध भावों वाले चित्र पाये जाते हैं। अनूप संस्कृत लायब्रेरी में तो राजस्थानी बातां आदि की कई सचित्र प्रतियाँ मथेणों की चित्रित की हुई प्राप्त हैं और हमारे कलाभवन में भी चन्दनमलयागिरी, शालिभद्र चौपाई और ढोला मारू की बात आदि प्राप्त है। जोधपुर, जयपुर, पीपाड़, आदि अनेक स्थानों में मथेनों के चित्रित किये हुए बहुत से जैन-जैनेतर ग्रंथ मेरे देखने में आये हैं। छोटी-मोटी अनेक चौबीसियाँ भी हमारे संग्रह में हैं।

मथेनों के अतिरिक्त और भी कई पेशेवर जातियों और व्यक्तियों को जैनों ने काफी आश्रय दिया। जयपुर के एक चित्रकार को मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में बुलाकर बड़े-बड़े विशाल चित्र बनाये गये। कलकत्ते के श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर, बद्रीदासजी आदि के मन्दिर में जयपुर के चित्रकार के बनाये हुए चित्र आज भी बने हुए हैं। बीकानेर के क्षमा-कल्याण ज्ञान भण्डार में दो कल्पसूत्र की बहुत सुन्दर सचित्र प्रतियाँ जयपुरी चित्रकारों की चित्रित हैं। बीकानेर, भांडासर और महावीरजी के मन्दिर में उस्ताद हिमाशुद्दीन के बनाये हुए शताधिक भित्तिचित्र हैं। जयपुर के चित्रकारों से आज भी जैन कल्पसूत्र आदि के चित्र स्वर्णक्षरा प्रतियों में बनवाकर गुजरात आदि में भेजे जाते हैं। इस तरह राजस्थान की चित्रकला के विकास एवं समृद्धि में जैनों का बहुत बड़ा योगदान है। जोधपुर, उदयपुर, सिरोही आदि के अनेकों सचित्र विज्ञप्ति चित्र वहीं के कलाकारों से जैन-समाज ने चित्रित करवाये। जयपुर का सचित्र विज्ञप्ति पत्र अजीमगंज पहुँचा। इस तरह राजस्थान की जैन चित्रकला का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org